सम्पादकीय

नियमसार : एक अनुशीलन

नियमसार गाथा ३४

विगत गाथाओं में षट्द्रव्यों की चर्चा करने के उपरान्त अब इस गाथा में यह स्पष्ट करते हैं कि काल को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय कहे गये हैं। गाथा मूलत: इसप्रकार है –

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकाय त्ति।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया हु बहुप्पदेसत्तं।।३४।।

(हरिगीत)

बहुप्रदेशीपना ही है काय एवं काल बिन।
जीवादि अस्तिकाय हैं ह्न इस भांति जिनवर के वचन।।३४।।

जैनागम के अनुसार इन छह द्रव्यों में से काल को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं। बहुप्रदेशीपने को काय कहते हैं।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारि-देव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''इस गाथा में यह कहा गया है कि कालद्रव्य को छोड़कर पूर्वोक्त शेष पाँच द्रव्य ही पंचास्तिकाय हैं।

कालद्रव्य द्वितीयादि प्रदेशों से रहित है; क्योंकि शास्त्र का ऐसा वचन है कि **समओ अप्पदेसो –** काल अप्रदेशी है। **काल को अकेला द्रव्यत्व ही है, शेष द्रव्यों को द्रव्यत्व के साथ-साथ कायत्व भी है। बहुप्रदेशीपने को काय कहते हैं। जिस प्रकार काय (शरीर) बहुप्रदेशी है; उसीप्रकार अस्तिकाय द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। अस्तिकाय पाँच हैं।**

अस्तित्व का नाम ही सत्ता है। सत्ता की क्या विशेषता है ?

वह सत्ता प्रतिपक्ष सहित है। अवान्तर सत्ता और महासत्ता के भेद से सत्ता दो प्रकार की है।

दोनों सत्ताओं में रहनेवाला प्रतिपक्षपना इसप्रकार है –

१. महासत्ता समस्त वस्तुविचार से व्यापनेवाली है और अवान्तर-सत्ता प्रतिनियत वस्तु में व्यापनेवाली है।

२. महासत्ता समस्त पदार्थों में व्यापकरूप से व्याप्त होनेवाली है और अवान्तरसत्ता प्रतिनियत एकरूप से व्याप्त होनेवाली है।

३. महासत्ता अनन्तपर्यायों में व्याप्त होनेवाली है और अवान्तरसत्ता प्रतिनियत एक पर्याय में व्याप्त होनेवाली है।

पदार्थों की अस्ति है - ऐसा भाव ही अस्तित्व है। उक्त अस्तित्व और कायत्व से सहित पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं।''

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''महासत्ता वीतरागता को स्पष्ट करती है। एक पदार्थ अन्य के कारण हो तो महासत्ता नहीं रहती। आत्मा है, पर्याय में राग भी है, निमित्त है, गुण भी है, परपदार्थ भी है; ये सब है; पर किसी अन्य कारण से नहीं है। सबका अस्तित्व है - ऐसा निश्चित करने पर धर्म होता है; क्योंकि महासत्ता का ज्ञान होने पर साधकपना होता है।[१]

सिद्ध हो अथवा निगोद, एक परमाणु हो अथवा महास्कन्ध - ये सब 'है' में आ जाता है। कोई विकारवाला हो अथवा अविकार वाला हो तो वह स्वयं के होने के कारण है अर्थात् जहाँ पराधीनता उड़ गई और स्वतंत्रता आ गई, वहीं सम्यग्दर्शनरूप प्रथम धर्म हुआ; क्योंकि **महासत्ता को स्वीकारते ही वीतरागदृष्टि हो गई है।**[२]

सर्व में व्यापनेवाली महासत्ता है और महासत्ता को जाननेवाला ज्ञान ही मोक्षमार्ग है।

प्रतिनियत वस्तु में व्यापनेवाली अवांतरसत्ता है। आत्मा है, पुद्गल है, छोटा परमाणु है, स्कन्ध है - ये अवान्तर सत्ता है। **आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में भेद करें तो वह भी एक दूसरे के कारण नहीं है; अतः अवान्तरसत्ता में भी वीतरागता ही है।** महासत्ता लें चाहें अवान्तरसत्ता लें, परन्तु वे किसी के कारण से है - ऐसा नहीं। पर के कारण मानें तो अवान्तरसत्ता व महासत्ता नहीं रहती।[३]

इन छह द्रव्यों में अस्तित्व और कायत्वरूप सहित पाँच अस्तिकाय है। कालद्रव्य को अस्तित्व है, कायत्व नहीं; क्योंकि काय के हेतु बहुप्रदेशीपने का उसके अभाव है। **जगत में जो वस्तु है, उसकी व्याख्या होती है। जो नहीं है, उसकी व्याख्या नहीं होती। वस्तु है तो उसके गुणपर्याय भी है। अस्तिपने में छह द्रव्य और कायत्व में पाँच द्रव्य आते हैं।** जिसप्रकार शरीर अधिक रजकणों का पिण्ड है, अतः वह काय है; उसमें बहुत से प्रदेशों का सद्भाव है। काल में प्रदेशों का अभाव है; क्योंकि वह एकप्रदेशी है।[४]''

---

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४१ २. वही, पृष्ठ १४१
३. वही, पृष्ठ १४१-१४२ ४. वही, पृष्ठ १४२

गाथा में तो मात्र इतना ही कहा गया है कि बहुप्रदेशी द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं और कालद्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय हैं; किन्तु टीका में अस्ति का अर्थ करते हुए महासत्ता और अवान्तरसत्ता की न केवल चर्चा की गई है; अपितु उन दोनों में विद्यमान अन्तर को भी स्पष्ट कर दिया गया है।

प्रश्न – यहाँ एक ही पंक्ति में दो बातें एक साथ कही जा रही हैं कि कालद्रव्य अप्रदेशी है और एकप्रदेशी है। अत: प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कालद्रव्यों के प्रदेश हैं ही नहीं या उसका एकप्रदेश है?

उत्तर – एकप्रदेशी और अप्रदेशी का एक ही अर्थ है। असंख्यात कालद्रव्यों में से प्रत्येक कालद्रव्य का मात्र एक प्रदेश ही होता है।

प्रश्न – यदि कालद्रव्य का एक ही प्रदेश होता है तो उसे अप्रदेशी क्यों कहते हैं ?

उत्तर – एक से अधिक प्रदेश नहीं है, अनेक प्रदेश नहीं है; यह बतलाने के लिए ही उसे अप्रदेशी कहते हैं।

अप्रदेशी में जो 'अ' है, वह अनेकप्रदेशत्व के निषेध के लिए है, एक प्रदेश के निषेध के लिए नहीं।

इसप्रकार यहाँ एक प्रदेशी है और अप्रदेशी – दोनों का एक ही अर्थ है कि कालाणु एक प्रदेशी है, अनेक प्रदेशी नहीं।

टीका के उपरान्त टीकाकार एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है –

(आर्या)

इति जिनमार्गाम्भोधेरुद्धृता पूर्वसूरिभि: प्रीत्या।
षड्द्रव्यरत्नमाला कंठाभरणाय भव्यानाम्।।५१।।

(हरिगीत)

आगम उदधि से सूरि ने जिनमार्ग की षट्द्रव्यमय।
यह रत्नमाला भव्यकण्ठाभरण गूँथी प्रीति से।।५१।।

इसप्रकार जिनमार्गरूपी रत्नाकर में से पूर्वाचार्यों ने प्रीतिपूर्वक छह द्रव्यरूपी रत्नों की माला भव्यजीवों के कण्ठ के आभूषण के रूप में प्रस्तुत की है।

इस छन्द का भाव गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''वीतरागी मार्ग के अतिरिक्त अन्य कहीं छह द्रव्यों का वर्णन नहीं है। वीतरागी जिनमार्गरूपी दरिया में से छह द्रव्यरूप रत्नों की माला भव्यजीवों के कण्ठाभरण के लिए संत मुनिराज बना रहे हैं।[१] अभव्यों के लिए यह छह द्रव्यरूप रत्नों की माला आभरण नहीं है।[२]''

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ १४३ २. वही, पृष्ठ १४३

छह द्रव्यों का वर्णन करनेवाली गाथायें रत्न हैं और उन रत्नों को व्यवस्थित रूप में गूँथकर यह रत्नमाला आचार्यदेव ने बनाई है। जो इसे कण्ठ में धारण करेगा, इन गाथाओं को कण्ठस्थ (याद) करेगा; यह गाथाओंरूपी रत्नों की माला उसके कण्ड का आभरण (आभूषण-गहना) बनेगी। इन गाथाओं में प्रस्तुत तत्त्वज्ञान उन भव्यों के कल्याण का कारण बनेगा।

यह छन्द मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा दिया आशीर्वाद तो है ही, साथ में मार्गदर्शन भी है तथा गाथायें भाव सहित कण्ठस्थ करने की प्रेरणा देनेवाला भी है।

नियमसार गाथा ३५-३६

विगत गाथाओं में षट्द्रव्य और पंच अस्तिकायों की चर्चा करने के उपरान्त अब इन गाथाओं में उक्त षट् द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या बताते हैं। गाथायें मूलत: इसप्रकार हैं -

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो जीवस्स असंखदेसा हु।।३५।।
लोयायासे तावं इदरस्स अणंतयं हवे देसा।
कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा।।३६।।

(हरिगीत)

होते अनंत असंख्य संख्य प्रदेश मूर्तिक द्रव्य के।
होते असंख्य प्रदेश धर्माधर्म चेतन द्रव्य के।।३५।।
असंख्य लोकाकाश के एवं अनन्त अलोक के।
फिर भी अकायी काल का तो मात्र एक प्रदेश है।।३६।।

मूर्त पुद्गल द्रव्य के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं। धर्म, अधर्म एवं एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं।

एक जीव, धर्म और अधर्म के समान लोकाकाश के भी असंख्य प्रदेश होते हैं तथा अलोकाकाश के अनंत प्रदेश होते हैं। कालद्रव्य के एकप्रदेशी होने से कायपना नहीं है।

इन गाथाओं का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमल-धारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''यहाँ छह द्रव्यों के प्रदेशों का लक्षण और किस द्रव्य के कितने प्रदेश होते हैं - यह बताते हैं।

शुद्धपुद्गल परमाणु द्वारा गृहीत नभस्थल ही प्रदेश है। तात्पर्य यह है कि **पुद्गल द्रव्य का एक परमाणु आकाश के जितने स्थल को रोकता (घेरता) है, उतने स्थल को प्रदेश करते हैं।**

पुद्गल द्रव्य के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं। लोकाकाश, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य तथा एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं। शेष जो अलोकाकाश है, उसके अनन्त प्रदेश हैं। कालद्रव्य का एक प्रदेश है, इसकारण उसके कायत्व नहीं है; पर द्रव्यत्व तो है ही।''

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी इन गाथाओं का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''आकाश द्रव्य में भी प्रमेयत्व नाम का गुण त्रिकाल विद्यमान है। प्रमेयत्व गुण के कारण अनन्त आकाश भी ज्ञान का ज्ञेय बनता है।

प्रत्येक द्रव्य में छह सामान्य गुण होते हैं, उनमें एक प्रमेयत्व नाम का गुण भी है, जिसके कारण प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय अवश्य बनता है।[१]

आकाश द्रव्य में प्रमेयत्व नाम का गुण त्रिकाल व्यापक है; अतः वह मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का भी विषय बनता है। ऐसा निश्चय करके सर्वज्ञ कथित तत्त्वों का निर्णय करना चाहिए। अतः छहों द्रव्य मति-श्रुतज्ञान में परोक्ष और केवलज्ञान में प्रत्यक्ष जानने में आते हैं - ऐसा निश्चित हुआ।[२]''

इसप्रकार इन गाथाओं में मात्र यही कहा गया है कि यद्यपि पुद्गल परमाणु एकप्रदेशी ही है; तथापि स्कंध की अपेक्षा पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश माने गये हैं।

धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्य - इन सबमें प्रत्येक के असंख्यात प्रदेश हैं और लोकाकाश के भी धर्म, अधर्म और एक जीव के बराबर असंख्यप्रदेश ही हैं। अलोकाकाश के अनंत प्रदेश हैं; परन्तु कालद्रव्य एकप्रदेशी ही है। यही कारण है कि उसे अस्तिकायों में शामिल नहीं किया गया है।

टीका के उपरान्त टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

(उपेन्द्रवज्रा)

पदार्थरत्नाभरणं मुमुक्षोः कृतं मया कंठविभूषणार्थम्।
अनेन धीमान् व्यवहारमार्गं बुद्ध्वा पुनर्बोधति शुद्धमार्गम्।।५२।।

(हरिगीत)

मुमुक्षुओं के कण्ठ की शोभा बढाने के लिए।
षट् द्रव्यरूपी रत्नों का मैंने बनाया आभरण।।
अरे इससे जानकर व्यवहारपथ को विज्ञजन।
परमार्थ को भी जानते हैं जान लो हे भव्यजन।।५२।।

---

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २४७ २. वही, पृष्ठ २४८

पदार्थरूपी रत्नों का आभरण (आभूषण-गहना) मुमुक्षुओं के कण्ठ की शोभा बढाने के लिए मैंने बनाया है। इसके द्वारा विज्ञजन व्यवहारमार्ग को जानकर शुद्धमार्ग को जानते हैं।

उक्त छन्द में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मैंने यह पदार्थों के स्वरूप को बतानेवाला रत्नमयी कण्ठाभरण (हार-माला) मुमुक्षुओं के कण्ठ की शोभा बढाने के लिए बनाया है। **जो मुमुक्षु भाई इसे कण्ठ में धारण करेंगे, कण्ठस्थ करेंगे, भाव समझ कर कण्ठस्थ याद कर लेंगे; वे मुमुक्षु व्यवहार एवं निश्चय मार्ग को समझ कर, उस पर चलकर अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त करेंगे।**

नियमसार गाथा ३७

यह गाथा अजीवाधिकार के उपसंहार की गाथा है। गाथा मूलत: इसप्रकार है -

पोग्गलदव्वं मुत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो चेदणगुणवज्जिया सेसा।।३७।।

(हरिगीत)

एक पुद्गल मूर्त द्रव्य अमूर्तिक हैं शेष सब।
एक चेतन जीव है पर हैं अचेतन शेष सब।।३७।।

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। इसीप्रकार जीव चेतन है और शेष द्रव्य चैतन्यगुण से रहित हैं, अचेतन हैं।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''उक्त मूल पदार्थों में पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है और शेष पाँच प्रकार के द्रव्य अमूर्तिक हैं। इसीप्रकार जीव चेतन है और शेष पाँच प्रकार के द्रव्य अचेतन हैं। स्वजातीय और विजातीय बंध की अपेक्षा से जीव और पुद्गलों को बंधदशा में अशुद्धता है; शेष धर्म, अधर्म, आकाश और काल - इन चार प्रकार के द्रव्यों में विशेष गुण की अपेक्षा शुद्धपना है।''

स्वामीजी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''परमाणु-परमाणु का मिलान होना यह सजातीय पुद्गल का अशुद्धपना है और जीव तथा पुद्गल का मिलान होना विजातीय अशुद्धपना है।[१]

आत्मा का आत्मा के साथ मिलान नहीं होता; अत: उसमें सजातीय अशुद्धपना नहीं होता, किन्तु जीव और पुद्गल का मिलान होने पर विजातीय अशुद्धपना जीव को होता है।[२]

इसप्रकार जीव और पुद्गल को बंध अवस्था में अशुद्धपना होता है; धर्म,

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २५३ २. वही, पृष्ठ २५३

अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्यों को अशुद्धपना नहीं होता। **छह द्रव्यों के सामान्य गुणों में तो शुद्धता ही रहती है, किन्तु विशेष गुणों में अशुद्धता होती है। विशेष गुणों की अशुद्धता भी जीव और पुद्गल को ही होती है, किन्तु धर्मादि चार पदार्थों के विशेष गुण में भी अशुद्धता नहीं होती। वे सदा शुद्ध ही रहते हैं।**[१]

आत्मा स्वभाव से त्रिकाल शुद्ध है और उसके सामान्य गुण भी शुद्ध ही है। विशेष गुणों की पर्याय में अशुद्धता होती है। **आत्मा चिदानन्द है – ऐसा अवलम्बन लेवें तो अशुद्धता उत्पन्न ही नहीं होती –इसे ही अशुद्धता नष्ट हुई – ऐसा कहा जाता है।**[२]''

उक्त गाथाओं और उनकी टीका में मात्र यह कहा गया है कि पुद्गलद्रव्य मूर्तिक हैं, शेष सभी द्रव्य अमूर्तिक हैं। इसीप्रकार जीवद्रव्य चेतन हैं और जीव को छोड़कर शेष द्रव्य अचेतन हैं। पुद्गल परमाणु दूसरे परमाणुओं से मिलकर स्कंधरूप परिणमता है – यह उसकी सजातीय अशुद्ध अवस्था है और जब वह पुद्गल द्रव्य जीव के साथ बंधता है तो वह उसकी विजातीय अशुद्ध अवस्था है।

जीव दूसरे जीवों से तो बंधता ही नहीं है; अत: उसमें सजातीय अशुद्धता नहीं होती; किन्तु पुद्गल के साथ बंधने के कारण जीव में विजातीय अशुद्धता पाई जाती है। शेष चार द्रव्य कभी किसी से बंधते नहीं; अत: उनमें अशुद्धता होती ही नहीं है।

इसके बाद अधिकार के अंत में टीकाकार मुनिराज एक मंगल-आशीर्वादात्मक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है ह्न

(मालिनी)

इति ललितपदानामावलिर्भाति नित्यं
वदनसरसिजाते यस्य भव्योत्तमस्य।
सपदि समयसारस्तस्य हृत्पुण्डरीके
लसति निशितबुद्धेः किं पुनश्चित्रमेतत्।।५३।।

(हरिगीत)

जिस भव्य के मुख कमल में ये ललितपद वसते सदा।
उस तीक्ष्णबुद्धि पुरुष को शुद्धातमा की प्राप्ति हो।।
चित्त में उस पुरुष के शुद्धातमा नित ही वसे।
इस बात में आश्चर्य क्या यह तो सहज परिणमन है।।५३।।

जिस भव्योत्तम के मुखकमल में सदा इसप्रकार के ललितपदों की पंक्ति शोभायमान होती है; उस तीक्ष्णबुद्धिवाले पुरुष के हृदयकमल में शीघ्र ही शुद्धात्मारूप समयसार शोभायमान होता है, इसमें क्या आश्चर्य है ?

---

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २५३ २. वही, पृष्ठ २५४

इस छन्द के भाव को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

''जीव अजीव का कुछ नहीं कर सकता ह्न ऐसा जिनके ज्ञान में निर्णय है, उसे अजीव पदार्थ का यथार्थ ज्ञान है।[१]

मैं जीव हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ; पर अजीव है; मुझमें और उसमें कोई संबंध नहीं है – ऐसा जिसको ज्ञान है – उन भव्यों के मुख में यह वाणी शोभा देती है।

मुझ में और पर में कोई संबंध नहीं है, विकल्प के साथ भी मेरा कोई संबंध नहीं है। आत्मा के निज स्वभाव में जो बारंबार रमण करता है, वह चैतन्य आत्मा परमात्मा हो जाता है।[२]''

अजीवाधिकार के इस अन्तिम छन्द में मात्र इतना ही कहा गया है कि जो भव्यजीव उक्त कथनों के मर्म को जानता है; वह तीक्ष्णबुद्धिवाला भव्योत्तम पुरुष समयसाररूप निज भगवान आत्मा को प्राप्त करता है।

अधिकार के अन्त में टीकाकार मुनिराज स्वयं लिखते हैं कि **इसप्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था, ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार (आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत) की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में अजीव अधिकार नामक दूसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।**

शुद्धभावाधिकार

(गाथा ३८ से गाथा ५५ तक)

नियमसार गाथा ३८

जीवाधिकार और अजीवाधिकार के निरूपण के उपरान्त अब यहाँ शुद्धभावाधिकार आरंभ करते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है ह्न

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ।।३८।।

(हरिगीत)

जीवादि जो बहितत्त्व हैं, वे हेय हैं कर्मोपधिज।
पर्याय से निरपेक्ष आतमराम ही आदेय है।।३८।।

जीवादि बाह्य तत्त्व हेय हैं और कर्मोपाधिजनित गुण और पर्यायों से भिन्न अपना आत्मा उपादेय है।

इस गाथा का भाव तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं –

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ २५५ २. वही, पृष्ठ २५५

''यह हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। परद्रव्यरूप होने से जीवादि सात तत्त्वों का समूह वस्तुत: उपादेय नहीं है।

सहज वैराग्यरूपी महल का शिखामणि (चूड़ामणि), परद्रव्यों से पराङ्मुख, पाँच इन्द्रियों के विस्तार से रहित, देह को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के परिग्रहों से रहित, परमजिनयोगीश्वर और स्वद्रव्य में तीक्ष्णबुद्धि के धारक आत्मा (मुनिराजों) को वास्तव में एक अपना आत्मा ही उपादेय है।

पारिणामिक भावों से भिन्न औदयिक, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक - इन चार भावों से अगोचर होने से द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधिजनित विभावगुणपर्यायों से रहित, अनादि-अनन्त अमूर्त और अतीन्द्रिय स्वभाववाला शुद्ध सहज परमपारिणामिक भाव है स्वभाव जिसका, ऐसा कारणपरमात्मा ही वास्तविक आत्मा है।

अत्यासन्न भव्यजीवों को उक्त निज परमात्मा (आत्मा) से अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है।''

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इस गाथा के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''जीवादि सात तत्त्वों का राग सहित विचार परद्रव्य है; क्योंकि राग से सम्यग्दर्शन नहीं होता है, अत: सातों तत्त्व उपादेय नहीं हैं।[१]

आत्मा अनन्त गुणों के पिण्डरूप वस्तु है, वह जीव है; कर्म अजीव है; पर्याय में राग-द्वेषादि के परिणाम होना आस्रव है; जीव का उस परिणाम में अटकना बन्ध है; आत्मा के लक्ष से निर्मलता होना संवर है; विशेष निर्मलता होना निर्जरा है और परिपूर्ण निर्मलता मोक्ष है - इन सात तत्त्वों को यहाँ परद्रव्य कहा है।[२]

सातों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं - ऐसा ज्ञान करने के लिए प्रथम राग की वृत्ति उठती है; किन्तु सम्यग्दर्शन का विषय अथवा ध्येय राग नहीं है; राग से पुण्य बन्ध होता है, उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता; इसलिए उस राग को हेय कहा है।[३]

कारणशुद्धपरमात्मा जो मोक्ष का आधार है, स्वभावभाव है; उसके रागमिश्रित विचार को भी हेय कहा है, आदरणीय नहीं कहा; तो फिर दया, दान, व्रतादि के परिणाम तो हेय ही हैं, आदरणीय नहीं - यह बात इसमें आ जाती है।[४]

इस भांति सातों तत्त्वों का रागमिश्रित विचार करना आदरणीय नहीं है, हेय है। **सिद्ध तथा केवली भगवान भी इस जीव के लिए परजीव हैं। 'मैं जीव हूँ' - ऐसा विकल्प भी आदरणीय नहीं है।** यह बात सर्वज्ञ के अलावा अन्यत्र नहीं है।[५]

१. नियमसार प्रवचन : आत्मधर्म जनवरी, १९७९, पृष्ठ ८ २. वही, पृष्ठ ८
३. वही, पृष्ठ ८ ४. वही, पृष्ठ ९ ५. वही, पृष्ठ १०

धर्मी जीव के शुद्ध आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई वीतरागी पर्याय के आश्रय से भी विकल्प की उत्पत्ति होती है; इसलिए उसकी भी परिगणना परद्रव्य में करके उपादेय नहीं है - ऐसा कहा है। शुद्ध आत्मा ही एक धर्म का कारण है; अत: उसी को उपादेय कहेंगे।[१]

आचार्य श्री उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में तथा पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में सात तत्त्व अथवा नव तत्त्व की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है; वह व्यवहारसम्यग्दर्शन की बात नहीं है; अपितु निश्चय-सम्यग्दर्शन की ही बात है।

यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि यहाँ इस शास्त्र में सात तत्त्वों को परद्रव्य कहकर हेय क्यों कहा है ? इन दोनों कथनों में सुमेल किस प्रकार है ?

यहाँ नियमसार में जो सात तत्त्वों को परद्रव्य कहकर हेय कहा है, वह रागयुक्त श्रद्धा को कहा है; कारण कि उसमें विकल्प उठता है और विकल्प से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए हेय कहा; जबकि तत्त्वार्थसूत्र में रागरहित नव तत्त्व की श्रद्धा की बात है।

धर्मी जीव जब अपने त्रिकाली शुद्धस्वभाव का ज्ञान-श्रद्धान करके स्व-अस्तिरूप से परिणमन करता है, तब सात तत्त्वों के विकल्प का परिणमन नास्तिरूप हो रहा है अर्थात् उसमें सातों का निर्विकल्पज्ञान आ जाता है। सात तत्त्व के समक्ष जुदा-जुदा देखने से आत्मा का या सात तत्त्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, किन्तु **स्व की अस्ति में परिणमन होने पर तथा सातों के विकल्प के अभावरूप परिणमन होने पर स्व का यथार्थ ज्ञान होने से स्व-परप्रकाशक स्वभाव के कारण सातों का ज्ञान आ जाता है।** इस अपेक्षा से ७ अथवा ९ तत्त्व की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है, वह उचित ही है।[२]

कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है। मुनि को तथा धर्मी जीव को आत्मा ही उपादेय है। सात तत्त्वों का रागसहित विचार करना उपादेय नहीं है। सम्यग्दर्शन का ध्येय तो कारणपरमात्मा - शुद्ध आत्मा है और वही उपादेय है।

देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से, शरीर से अथवा कर्म के मन्दोदय से तो धर्म होता ही नहीं, दया-दानादि के शुभभावरूप औदयिक भावों से भी धर्म नहीं होता तथा उपशम, क्षयोपशम एवं क्षायिकभाव यद्यपि वीतरागी पर्यायें हैं; तथापि उनके आधार से धर्म नहीं होता। इसका कारण यह है कि ये सब पर्यायें हैं और पर्याय में से पर्याय नहीं आती।

धर्म तो त्रिकाली परमपारिणामिकस्वभावभाव के आश्रय से ही होता है; चार भावों के आश्रय से धर्म नहीं होता।

(शेष पृष्ठ-24 पर...)

१. नियमसार प्रवचन : आत्मधर्म जनवरी, १९७९, पृष्ठ १० २. वही, पृष्ठ १२-१३